इरोम शर्मिला

धर्मनिरपेक्षता, जनतंत्र समाजवाद, समानता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए समर्पित समाचार पत्र

हिंदी साप्ताहिक

जनता रैबार

रविवार 21सितंबर 2014

₹ 1

मसूरी से प्रकाशित समाचार पत्र | वर्ष 02 अंक 37, पृष्ठ : 08 | RNI-UTTHIN/126435/2013 | मूल्य :1/-प्रति, वार्षिक 120 रुपये

गोपाल राम का लेख एक गरीब की विनम्र चुनौति देखिए पेज –2 से 5 तक।

इरोम शर्मिला पर कविता – पेज 5

1-8

अच्छे काम की सराहना भी होनी चाहिए

उत्तराखंड त्रासदी के एक साल में खामियां रहीं, तो कुछ अच्छी पहल भी हुई

जबर सिंह वर्मा

आपदा के बाद एक साल में खुद कोई पहल करने की बजाय हम सिर्फ आरोप–प्रत्यारो में ही फंसे रहे। हेमकुंड में सिक्ख भाईयों के जत्थे के जत्थे आए, बिना किसी प्रचार–शोरगुल के और आज गोबिंदघाट जाइए, आपदा के निशान ढूंढने पड़ेंगे। मगर, हिंदू धर्म के ठेकेदार और झंडाबरदार भी कहीं नजर नहीं आ रहे हैं।

हम हिंदुस्तानी आलोचक बहुत अच्छे हाते हैं, तिल का ताड़ बनाकर पेश करना हमारा शगल होता जा रहा है। पिछले साल उत्तराखंड के केदार धाम समेत कई हिस्सों में बहुत बड़ी प्राकृतिक आपदा आई, हजारों लोग काल–कलवित हुए, लाखों अनाथ हुए। हमारे उत्तराखंड की तो इससे आर्थिक, भौगोलिक, पारिस्थितिकी, सामाजिक स्थिति और भी न जाने क्या–क्या बर्बाद हुई। इस भीषण त्रासदी के एक साल बाद यात्रा शुरू हो पाई, यह एक उपलब्धि है, ऐसा माना जाना चाहिए। क्योंकि, अगर यात्रा एक साल भी ब्रेक होती तो दुनिया में गलत संदेश जाता और लोग इस यात्रा से विमुख होते। हालांकि, इससे ये लोग भगवान की कृपा पाने से वंचित रह जाते, कोई अधर्म या अनर्थ हो जाता, इसमें मैं नहीं पढ़ना चाहता, मगर इतना जरूर है कि यात्रा पर निर्भर लाखों लोग यात्रा बंद होने से प्रभावित होती। उनकी रोजी–रोटी चौपट हो जाती। यात्रा शुरू करने में देरी से यह नुकसान दीर्घकालीन होता। ऐसा माना ही जाना चाहिए।

यात्रा रूट खोलने में बहुत मुश्किलें थीं, पुराना सुगम रास्ता बह गया था, नया रास्ता बनाना था, जो बहुत जटिल और दुर्गम था। पूरे साल केदार धाम में बर्फ रही, यहां तक की मई के माह में भी वहां बर्फ थी। रास्ता बनाने के लिए सिर्फ और सिर्फ मानव श्रम ही एक रास्ता था। कोई भी मशीन उस रास्ते को काट नहीं सकती थी, कहीं पर चट्टान तोड़नी थी, कहीं ग्लेशियर काटना था। रास्तेभर श्रद्धालुओं के मृत शरीर और अवशेष बिखरे थे। ऐसे में काम करने वालों की मानसिक स्थिति क्या हो सकती है, समझा जा सकता है। उपर से मौसम की बेरूखी, शून्य से नीचे के तापमान में सब्बल, बेल्चा, फावड़ा, घन चलाना हिम्मत का काम है। जान जोखिम में डालकर डटे इन मजदूरों को हमें सलाम करना चाहिए। ऐसी मुश्किल हालातों में भी हम पहाड़ की इच्छा शक्ति और जिजीविशा को दुनिया को दिखाने में सफल रहे, इसके लिए हमें सरकार और प्रशासन की ज्यादा नहीं तो थोड़ा सराहना भी करनी चाहिए।

हालांकि बहुत काम बाकी है, नदी के किनारे बसी हर बस्ती में नुकसान हुआ है। इसे सही करने में हमें वक्त लगेगा, अलकनंदा के तटीय इलाक. ों और केदार घाटी को पटरी पर लाने में कम से कम 10 साल और पूर्व स्थिति में लाने में 25 साल लगेंगे। बहुत कमियां है, खामियां हैं,लेकिन हमें वहां कि भौगोलिक स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए। जरूरी नहीं है कि विरोध के लिए विरोध किया जाए। सेना के हैलीकॉप्टरों ने इस संकरी घाटी में कैसे उड़ान भरी होगी? हम कह देते हैं कि हैलीकॉप्टर क्यों नहीं भेजे, जो मृत शरीर अब मिल रहे हैं, वह उस पहाड़ी के हैं, जो खड़ी चढ़ाई पर थे। इसलिए तात्कालिक रूप से वहां किसी का ध्यान नहीं गया, लेकिन बाद में सर्च टीम को से वहां जाना चाहिए था। बहुत से लोगों को मुआवजे की परेशानी है। बहुत परेशानियां हैं, लेकिन कुछ लोग किसी पार्टी विशेष चश्मे से इसे देखकर यह कह दे रहे हैं कि यात्रा खोलने की जरूरत क्या थी, यह गलत है, यह भी संभव है कि अभी कंकाल और मृत शरीर मिलेंगे। आने वाले कुछ सालों में ये मिलते रहेंगे। इसलिए हमें सही बातों का समर्थन और गलत बातों के विरोध की परंपरा बनानी चाहिए। हो सकता है, दोबारा जब इस घाटी में कहीं कंकाल मलबे के नीचे दबे मिलें, तो सूबे में किसी और की सरकार हो। आपदा में गोबिंद घाट भी तबा हुआ। हेमकुंड का रास्ता भी। सिक्ख भाईयों के जत्थे के जत्थे आए, बिना किसी प्रचार–शोरगुल के और आज गोबिंदघाट जाइए, आपदा के निशान ढूंढने पड़ेंगे। जो गाड़ियां रेत के नीचे दबी थी,उनके एक एक पार्ट को खोल बोरे में भरकर ले गए और पंजाब जाकर फिर से गाड़ी बसेम्बल करवा ली। हिंदू भाई क्या कर रहे हैं। धर्म के नाम पर सिर्फ राजनीति। हायतौबा–हो–हल्ला। इसके अलावा कुछ और आता है क्या हमें। यहां एक धर्म को उकसा कर वोट के लिए इस्तेमाल करने, धर्म के नाम पर लड़ने–लड़ाने वालों की कमी नहीं है। राजनैतिक फायदे के लिए कार सेवा भी कर लेते हैं, बाबरी मस्जिद तोड़ने पहुंच जाते हैं, मगर अपने आस्था के केंद्र ध्वस्त हो जाने पर पीठ दिखाकर भाग जाते हैं।

सांप्रदायिकता के नायक को जेड श्रेणी सुरक्षा मजाक

मुज्जफरनगर दंगों के आरोपी और भाजपा विधायक संगीत सोम को केंद्र सरकार के कहने पर जेड श्रेणी की सुरक्षा दी जा रही है। बीजेपी के शाहनवाज हुसैन की प्रतिक्रिया आई है कि जो लोग खतरे में हैं, उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी सरकार की है। शाहनवाज साहब की इस तरह की प्रतिक्रिया पर मुझे दया आती है। इस दया की वजह समझना किसी के लिए भी शायद मुश्किल नहीं है।

कांग्रेस, सपा, बसपा ने सोम को जेड सुरक्षा देने का कड़ा विरोध किया। वास्ताव में झूठी अफवाह फैलाने वाले दहशत और सांप्रदायिकता के नायक को सलाखों के पीछे भेजने की बजाय जेड श्रेणी की सुरक्षा से नवाजा जाना देश में नफरत फैलाने वालों को प्रोत्साहित करने वाला कदम है। इससे नफरत फैलाने वालों के हौसले तो बुलंद होंगे ही साथ ही अल्पसंख्यकों में

मुज्जफरनगर दंगा

असुरक्षा और अलगाव की भावना पैदा होगी। यह अजीब सी बात है कि दंगा फैलाने वालों से खौफजदा पीड़ितों की सुरक्षा के पुख्ता इतजामात करने की बजाय केंद्र सरकार को अपने विधायक को हीरो बनाने की पड़ी है। दर्जनों हत्या के जिम्मेदार सोम को जेड सुरक्षा दंगा पीड़ितों के साथ क्रूर मजाक है। सोम की सुरक्षा के लिए कोई खतरा हो या नहीं, मगर उनकी जेड श्रेणी सुरक्षा भारत के दर्जनों निर्दोश नागरिकों की हत्या, उनकी जिंदगी को नरक से भी बदतर बनाने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति को दो समुदायों के बीच नफरत, सांप्रदायिक द्वेष फैलाने का लायसेंस जरूर है। बीजेपी के इस कदम से साफ जाहिर है कि वह सांप्रदायिक लोगों को बढ़ावा देने पर तुली हुई है। मोदी का सबको साथ लेकर चलने का नारा सिर्फ चुनावी सिगूफा था, जो प्रधानमंत्री की कुर्सी मिलते ही फूस्स हो चुका है। हालांकि, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब आदि राज्यों में हुए चुनावों में जनता ने संकेत दे दिया है कि सबको साथ लेकर चलने के जिस एजेंडे के साथ बीजेपी को सत्ता दी थी, उससे भटके तो नजीते बुरे होंगे। अब देखना यह है कि मोदी निरंकुश होकर सत्ता चलाते हैं या जनमत से सबक लेंगे। मजेदार बात यह भी है कि सोम को जब हाईकोर्ट के निर्देश पर वाई श्रेणी की सुरक्षा पहले से ही दी जा चुकी है, तो अब श्रेड श्रेणी सुरक्षा का मतलब क्या है। हर समय 14 कमांडों से घिरने के बाद को संगीत सोम के आसपास का माहौल तो अब कमजोर तबकों के लिए और भी भयावह दिखेता। जबकि, सोम खुद इस सुरक्षा घेरे की आढ़ लेकर सांप्रदायिक उन्माद फैलाने से बाज आएंगे, यह कहना मुश्किल है। **ब्यूरो**

शुभ्रदीप और मीरा द्वारा मुज्जफरनगर दंगों पर बनाई कई फिल्म अब इतिहास की वो पहली फिल्म बन गई है, जिसे देखाने पर मोदी सरकार ने बंदिश लगाई है। इस फिल्म में साफ साफ दिखाया गया है कि मुज्जफरनगर में दंगे भाजपा ने करवाए थे। यह पहले से ही साफ था, मगर फिल्म से सच्चाई आम आदमी के सामने आ जाएगी, इसका भय मोदी सरकार को था। इसलिए इस फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगाई गई है। दंगों के पीछे किसी लड़की के साथ छेड़छाड़ का कोई भी प्रयास नहीं था और छेड़खानी की यह पूरी झूठी कहानी भाजपा के एक विधायक ने एक पाकिस्तानी वीडियो को मुज्जफरनगर का बताकर फैलाया था और दंगों की तैयारी तो भाजपा महीनों से कर ही रही थी। इस फिल्म के निर्माता शुभ्रदीप का ब्रन हेमरेज होने से देहांत हो गया है।

एक गरीब की विनम्र चुनौती

एक जनतांत्रिक समाज में 'राजयुगीन' शब्दावली गैर लोकतांत्रिक है। गरीबों, वंचितों हेतु वाकई कोई लोकतांत्रिक सरकार प्रतिबद्धता जाहिर करती है तो उसको ऐसे प्रतीकों को भी बदलना होगा। हम उस वक्त का इंतजार करेंगे जब गरीब, वंचित कह सकेंगे कि हां हमने अपने बीच से सामूहिक हितों के लिए अपना प्रतिनिधि चुना है। तब कई आडंबरों और औपचारिकताओं की आवश्यकता शायद न रहे।

"हमारी सरकार गरीबों की सरकार होगी, भारत के गांवों में रहने वाले शोषित, वंचित, देश के युवाओं, महिलाओं के लिए काम करेगी।" ये पंक्तियां संसद भवन के सेंट्रल हॉल में आज फिर कही गयीं। राजनीतिक गलियारों, मुहाव. रों में इन पंक्तियों को न जाने कितनी बार दो. हराया गया होगा। परन्तु आज तटस्थ नहीं रह गया क्योंकि इन पंक्तियों के साथ एक और स्वर सुनाई दिया कि यह ऐतिहासिक मौका है, अविस्मरणीय पल है, अभूतपूर्व क्षण है इत्यादि–इत्यादि। घटना पर ध्यान दें तो महज इतनी है कि एक राजनीतिक पार्टी, जो पिछले दो चुनाव हार गयी थी; इस बार जीत गयी है। ऐतिहासिक क्षण बोलकर कुछ लोगों को महिमामंडित करने की पुरजोर कोशिश में घटना की वास्तविकता, वजह व अर्थ कहीं खो गया लगता है। कई लोग भावुक हो उठे हैं शायद इसकी उन्हें आशा न थी, कई गर्व में हैं। बावजूद इसके लोकतान्त्रिक व्यवस्था की गरिमा व उसके प्रति नागरिक निष्ठा का सम्मान करते हुए मैं भारतीय जनता पार्टी को देश की जनता द्वारा प्रतिनिधित्व की जिम्मेदारी सौंपे जाने के इस महत्वपूर्ण अवसर पर बधाई देता हूं। साथ ही ये अपेक्षा करता हूं कि अगले पांच वर्ष में कुछ ऐसे कदम जरूर उठाये जायेंगे जिससे इस देश के माथे पर सदियों से लगा गरीबी, शोषण, वंचित कहलाने का कलंक कुछ हद तक कम होगा। शीर्ष की पंक्तियों में बदलाव आने की संभव शुरूआत होगी।

अब कुछ सवाल जो लंबे समय से अंतस को झकझोड़ते चले आ रहे हैं। ऐसे मौकों पर और मुखर हो उठते हैं। मुझे कई बार लगता है कि राजशाही के समाप्त हो जाने के बाद भी उसका संस्कार कितने गहरे अभी मनों में बैठा हुआ है। राजशाही के जमाने में जनमत संग्रह द्वारा राजा चुनने की परंपरा के उदाहरण नहीं मिलते। ये किसी बहादुरी या राजपरंपरा के हिस्से होने भर से राजा बनने के स्वयंभू अधिकारी बनते गये। ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने भर से ही महान, विद्वान समझा जाता था। केवल विरासत भर से। यहां किसी परंपरा को गलत सही बताना उद्देश्य नहीं है। सिर्फ लोकतांत्रिक व्यवस्था की तरह ध्यान दिलाना भर है। उस जमाने में 'राज. तिलक', 'ताजपोशी' जैसी बातें की जाती रही हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। लेकिन आज जब हम ये मानते हैं कि हम लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को मानते हैं। वयस्क मताधिकार, जिसके तहत गरीब, वंचित, राष्ट्रपति व उद्योग. पति सबका मत समान है। समान नागरिक सं. हता के जरिये ही अपना प्रतिनिधित्व चुनते हैं। सबका, सबकी भागीदारी सबकी आवाज से बना तंत्र। तब इसमें कोई चुना हुआ प्रति. नितधि 'राजतिलक; 'ताजपोशी' का अधिकारी कैसे हो सकता है। क्या मीडिया हमें फिर से राजशाही में ले जाना चाहता है। या उसके पास लोकतांत्रिक समाज के लिए यथोचित शब्दावली का अकाल पड़ गया है। लोकतान्त्रिक पद्धति से चुना गया व्यक्ति 'राजा' नहीं होता, 'जन प्रतिनिधि' हुआ करता है। लोगों की बात की महज अभिव्यक्ति करने वाला व यथोचित व्यवस्था हेतु सर्वसम्मति से निर्णय लेने वाला व्यक्ति। लोकतंत्र में जनप्रति. निधि को जनता कुछ जिम्मेदारियां सौंपती है। निर्वहन करने हेतु। ताज सजाने के लिए नहीं। इसलिए एक जनतांत्रिक समाज में 'राजयुगीन' शब्दावली गैर लोकतांत्रिक है। गरीबों, वंचितों हेतु वाकई कोई लोकतांत्रिक सरकार प्रतिबद्धता जाहिर करती है तो उसको ऐसे प्रतीकों को भी बदलना होगा। हम उस वक्त का इंतजार करेंगे जब गरीब, वंचित कह सकेंगे कि हां हमने अपने बीच से सामूहिक हितों के लिए अपना प्रतिनिधि चुना है। तब कई आडंबरों व औपचारिकताओं की आवश्यकता शायद न रहे। यहां एक बात और स्पष्ट कर देना जरूरी है कि चीजें हमेशा तथ्यों के जरिये समझी जा सकती हैं ये आवश्यकता नहीं। कई बार, कम से कम ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तो प्रतीकों से ज्यादा बेहतर समझी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए 'राम' को देखें। राम को एक दृष्टि से देखने पर वह मंदिर–मस्जिद के विवाद तक सीमित हो जाता है। मंदिर उसका सर्वश्रेष्ठ स्थान हो जाता है इसी राम को दूसरे प्रतीक के तौर पर देखें तो हमें साफ नजर आयेगा कि राम जहां पारिवारिक संबंधों में जीने की ज्वलंत प्रेरणा है वहीं उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक की एक संघर्ष यात्रा व उत्तर–दक्षिण की एकता के, सांस्कृतिक एकता के ज्वलंत प्रतीक हैं। पूरे रास्ते भर की यात्रा में वनवासियों, भीलों, किरातों, निषादों; जिनको आज गरीब वंचित कहा जायेगा, उनकी एकता, सामूहिक सांस्कृतिक–राजनैतिक क्रियाकलापों की अनुपम गाथा है। यह राम की एक स्वस्थ धारा है जहां राम–लंका पर विजय प्राप्त तो करता है पर उस पर राज खुद नहीं करता। विभीषण को गद्दी पर बिठाता है सांस्कृतिक एकता का लक्ष्य हासिल कर वापस लौट जाता है अयोध्या। समुद्र में पुल बंधवाकर उसे अन्य हिस्सों से जोड़ता है। ऐसा प्रतीक क्या हमारी गरीबों की सरकार को प्रेरणा दे सकता है, यदि हां तो एक स्वस्थ सांस्कृतिक धारा का विकास ऐसे तमाम प्रतीकों के जरिये हो सकता है। मंदिर–मस्जिद का विवाद ऐसे 'राम' की प्रेरणास्पद छवि को कुंद करता है। प्रतीकों का सवाल इसलिए उठाया क्योंकि राजनीति में प्रतीकों का बहुत महत्व है। क्या हम आशा कर सकते हैं कि एक लोकतांत्रिक समाज में जनमत द्वारा चुनी गयी सरकार इन प्रतीकों से वर्तमान संदर्भों में लोकतान्त्रीकरण की दिशा में कदम बढ़ायेगी? या बेहतर लोकतंत्र के ख्वाब के साथ ही संतुष्ट रहना होगा।

मैं प्रचलित राजनीति का सक्रिय हिस्सा नहीं हूं। न ही मेरी कोई तथाकथित सामाजिक–राजनैतिक हैसियत है। मैं तो गांधी की प्रेरणा के अनुसार समाज कर्म के माध्यम से स्वंय की असलियत से परिचित होने के लिए तैयार हूं। ऐसे में जब गरीबों के नाम पर स्वराज के नाम पर शोरगुल सुनता हूं तो पीड़ा होती है। और ये प्रश्न ज्यादा तीव्र होता है कि कौन है गरीब? क्या है स्वराज? मनुष्य हूं तो इसका कहीं संभव, कुछ तत्काल संतुष्टिपरक उत्तर खोजता हूं; तब मुझे गीता की पंक्तियां याद आती हैं, "उसमें उसका सब कुछ छीन लिया गया हो कि उसे सड़कों पर अकेला, भूखा, ठण्ड से सिकुड़ता घूमना पड़ता हो कि उसे किसी भी जीव की आंखों में अपने लिए ममता व प्रीती न झलकती हो फिर भी अपने होठों में मुस्कुराहट लिये वह अकेला चला जा रहा हो क्योंकि उसने आंतरिक स्वराज्य प्राप्त कर लिया है।" यहां ये पंक्तियां किसी महान ग्रन्थ की महान भगवदवाणियां न होकर, हमारे पूर्वजों के अनुभवों, परस्पर शुभेच्छाओं व कल्पनाओं की अभिव्यक्ति भर हैं। गीता को हम धर्मग्रन्थ मानते हैं, ईश्वर वाणी मानते हैं इसलिए ये पंक्तियां महान हो गयी इस बहस में मैं नहीं पड़ना चाहता। ये पंक्तियां गीता में न होकर बाइबिल या कुरान या अन्यत्र कहीं और भी होती तो भी महज हमसे पहले दुनिया में जी चुके लोगों के अनुभवों व उससे जनित भविष्य की प्रेरणाभर ही होती। असल में तो सत्य किसी धर्म, धर्मग्रन्थ, विचारधारा, वैचारिक समूह, अध्यात्म संगठन, शासन–प्रशासन, राजनैतिक–सामाजिक व्यवस्था के एकाधिपत्य की वस्तु नहीं है। सत्य या वास्तविकता सर्वत्र बिखरी पड़ी है। जिसने परिश्रम किया, पा लिया। इस पाने में एक विनम्रता है। मैंने किसी सत्य का दर्शन किया है तो सहज ही प्रेरणास्रा. `त बनूंगा। इसकी जगह कुछ और हो रहा है तो यह विकृति है संस्कृति नहीं। आज मानव समाज के तमाम संबंध स्व से संबंध, स्व से पर का संबंध, परिवार संबंध, समाज संबंध, मानव–प्रकृति संबंध में एक अलग किस्म का अलगाव आया है। जिससे हमारे समाज को आपस में जोड़ने वाले जो सांस्कृतिक संबंध थे वे छिन्न–भिन्न हो रहे हैं। आज सांस्कृतिक मूल्यों को पुनर्परिभाषित करना एक अनिवार्यता हो गयी है। इसलिए अपने–अपने सत्यों पर विश्वास रखते हुए भी एक विनम्रता के साथ दूसरों के सत्य पर भी संवाद का माहौल बनाकर एक वृहत सत्य का निरूपण करना समाज की सांस्कृतिक गरीबी को कम करने की तरफ कदम होगा। एक लोकतांत्रिक समाज में मनुष्य की पहचान, मनुष्य की गरिमा–अस्मिता का क्या अर्थ होना चाहिए? यह सवाल सांस्कृतिक गरीबी पर संवाद का केन्द्रीय सवाल हो सकता है? क्या कोई लो. कतांत्रिक सरकार इस तरह की प्रक्रियाओं को समाज में संवाद का माध्यम बनाने में अगुवा की भूमिका निभा सकती है। मनुष्य की गरिमा उसकी सांस्कृतिक अस्मिता के व्यापक घेरे का निर्माण कर सकती है? यदि हां तो तमाम निर्जीव विचारों को अपनी आत्मा से उसी तरह से अलग करने का वक्त; जैसे पतझड़ के समय में पेड़ अपने निर्जीव पत्तों को खुद से अलग करता है, ताकि फिर से नये पत्तों का संवरण हो सके, हमारे पास हमेशा मौजूद है। पुनः गीता की पंक्तियों पर जाएं। क्या उक्त पंक्तियों में परिभाषित व्यक्ति कभी गरीब हो सकता है? फिर गरीब है कौन? किस गरीब के लिए सरकारें बनती आ रही हैं आज तक? गरीब आज भी अपरिभाषित है। हमने गरीबी रेखा से नीचे व गरीबी रेखा से ऊपर कुछ रुपयों की आय के आधार पर गरीब को परिभाषित करने की कोशिश जरूर की है। फिर भी यह प्रश्न अनुत्तरित है कि असल में गरीब है कौन? ये गरीबी रेखा के ऊपर जाना या नीचे जाना क्या होता है? गरीबी रेखा से नीचे कैसे पहुंच गया कोई? कैसे बनते हैं गरीब? और क्या–क्या चाहिए इस गरीब को कि यह गरीबी रेखा से मुक्ति पा जायेगा। गरीबी की लक्ष्मण रेखा को लांघ जायेगा? इन सवालों की तसील में जाने का वक्त आ गया है। क्योंकि हमारी जनतांत्रिक सरकार के मुख्य प्रतिनिधि ने संसद के सैंट्रल हॉल में कहा कि हमारी सरकार गरीबों के लिए होगी।

नोट : गोपाल राम के लेख का शेष भाग पेज 2 से पेज 4 तक लगातार देखें ... ।

यहां गौरतलब है कि उन्होंने यह नहीं कहा कि सबके लिए होगी, यह भी नहीं कहा कि अमीरों के लिए भी होगी। यह बात गरीबों में एक आशा तो जगाती ही है।

अब अपने देश के परिदृश्य में गरीबी को दखें तो पता चलता है कि यहां हर आदमी गरीब पैदा होता है, गरीब मरता है। क्योंकि वास्तव में अमीर है कौन ये अभी तक तय नहीं हा पाया है। जिसके पास आज खरबों की संपत्ति है वो आज अमीर है कल किसी की उससे ज्यादा हो गयी तो वो अमीर। यानी अमीरत्व कोई आखिरी पड़ाव नहीं है। कोई कह सके कि हां, अब मैं अमीर हो गया। जैसे गीता में स्पष्ट है कि ऐसे आदमी ने आंतरिक स्वराज्य प्राप्त कर लिया है। क्या कोई कह सकता है कि हां मैंने अमीरत्व प्राप्त कर लिया है अब और जरूरत नहीं। ऐसा दुनिया में नहीं हो पाया अमीरों की लिस्ट हमारे पास है उसमें फेरबदल होता रहता है। अर्थात जो खरबपति हैं वो भी बेचारा गरीब है तो हम सब गरीब हैं। सारी दुनिया गरीब है। जाहिर है गरीबों की सरकार है, गरीबों पर ही राज करेगी। शोषित, वंचितों की, शोषित वंचितों के लिए है। अब मुझे कभी अमीर होना ही नहीं है तो गरीबी मुक्ति का प्रश्न बेईमानी हो जाता है। यदि इसी अर्थ में गरीबी मुक्ति की बात हो रही है तो यह सार्वजनिक बेईमानी तो है ही शायद नासमझी भी। अतः इस सृष्टि की अनुपम कृति मनुष्य प्रजाति सब कुछ उपलब्ध होते हुए भी गरीब रहने को विवश है। हमारी विडंबनाओं की शुरूआत यहीं से होती है।

जब गरीबी का इतना व्यापक साम्राज्य है। वह हर कृति में समा गई है तो मेरी क्या हैसियत कि मैं खुद को इससे इतर घोषित करूं। मैं भी एक गरीब हूं। एक गरीब परिवार में पैदा हुआ। कहते हैं जन्मना व मरना किसी के हाथ में नहीं होता। इसका आगे जिक्र करेंगे पर गरीबी में जन्म लेना मेरी ही नहीं हमारी सामूहिक नियति है। किस तरह का गरीब होगा, इसमें भिन्नता हो सकती है। फिलहाल मैं जिस गरीब परिवार में जन्मा हूं, मुझे आज आश्चर्य होता है कि मैंने अपने परिवार के किसी सदस्य के मुंह से यह शब्द नहीं सुना कि हम गरीब हैं। अभी तक नहीं सुना कि हम गरीब लोग हैं या हमें अमीर होना है। यहां यह कहा जा सकता है कि शायद वो गरीबी की प्रचलित परिभाषा–भाषा से परिचित न हों इसलिए। लेकिन ऐसा कुछ आभाव नहीं झलका। खुद को केन्द्र में रखकर कहने से बात कहने में ज्यादा सुविधा होती है। इसलिए अपनी गरीबी को साझा कर कह रहा हूं। ताकि कोई वास्तविकता के नजदीक बात कह पाऊं। जब थोड़ा बड़ा हुआ चीजों को देखने लायक तो पता चला कि हमारे पास गांव के अन्य लोगों की तरह पक्के पत्थरों का घर नहीं है। मां ने मिट्टी की दीवारें बनाकर एक कच्चा घर बनाया हुआ है, उसकी दीवारों के ऊपर कुछ डंडे डालकर किसी तरह से छत पर पुआल आदि बिछाकर मौसम में बचाव का अस्थायी आश्रय बनाया हुआ है, इस घर ने हमें कभी अभावग्रस्तता या हीन भावना में नहीं डाला। बल्कि मिट्टी की दीवार हमारे घर में ही है केवल। ये गर्व महसूस हुआ। मां की मेहनत के प्रति कृतज्ञता भी। पिताजी ने काम के बदले अनाज की रीति पर काम किया। उनकी ईमानदारी से कभी अन्न का अभाव महसूस नहीं हुआ। खेती की नाममात्र भी जमीन न होने के बावजूद हमको कभी बाजार से अनाज खरीदना हो, ये मुझे याद नहीं। लेकिन जबसे हम भाई–बहनों ने कुछ होश संभालना शुरू किया और इधर–उधर जाने लायक हुए तो फिर घरवालों ने बताना शुरू किया वो पंडित हैं, वो ठाकुर हैं। उनके घर के अंदर मत जाना, उनके पास मत जाना। उनको छूत लग जाती है वे अपवित्र हो जाते हैं। वे बड़े लोग हैं उनको सलाम करना इत्यादि इत्यादि। पिताजी के साथ किसी घर में गये तो छींटे मारना पानी के। जिस स्थान से उठेंगे, वहां पर पानी डालना। खाकर हम खुद उनके घरों में खाने की थाली धोकर उठेंगे तो उस बर्तन में भी पानी के छींटे डालना। कई तरह के ऐसे शब्दों का इस्तेमाल जिससे उनका बड़प्पन साबित होता हो और हमारा निम्न पना अर्थात गरीबी। सीधे मुंह बात नहीं करना।

जबसे हम भाई–बहनों ने कुछ होश संभालना शुरू किया और इधर–उधर जाने लायक हुए तो फिर घरवालों ने बताना शुरू किया वो पंडित हैं, वो ठाकुर हैं। उनके घर के अंदर मत जाना, उनके पास मत जाना। उनको छूत लग जाती है वे अपवित्र हो जाते हैं। वे बड़े लोग हैं उनको सलाम करना इत्यादि इत्यादि। पिताजी के साथ किसी घर में गये तो छींटे मारना पानी के। जिस स्थान से उठेंगे, वहां पर पानी डालना। खाकर हम खुद उनके घरों में खाने की थाली धोकर उठेंगे तो उस बर्तन में भी पानी के छींटे डालना। कई तरह के ऐसे शब्दों का इस्तेमाल जिससे उनका बड़प्पन साबित होता हो और हमारा निम्न पना अर्थात गरीबी। सीधे मुंह बात नहीं करना। उनके छोटे बच्चे भी जब पिताजी व उनकी उम्र से बड़े लोगों को बिना किसी संबोधन के नाम लेकर बुलाते थे तो लगता था कि वाकई हम लोग घटिया लोग हैं ये लोग कितने महान हैं। मनुष्य में समानता के प्रति स्वीकार्यता होती है। असमानता के प्रति नहीं। फिर भला इस असमानता के प्रति कैसे किसी में स्वीकार्यता हो सकती है। ये सब उपक्रम लगातार देखकर मन ग्लानि से भर दिया।

उनके छोटे बच्चे भी जब पिता. जी व उनकी उम्र से बड़े लोगों को बिना किसी संबोधन के नाम लेकर बुलाते थे तो लगता था कि वाकई हम लोग घटिया लोग हैं ये लोग कितने महान हैं। मनुष्य में समानता के प्रति स्वीकार्यता होती है। असमानता के प्रति नहीं। फिर भला इस असमानता के प्रति कैसे किसी में स्वीकार्यता हो सकती है। ये सब उपक्रम लगातार देखकर मन ग्लानि से भर दिया। यहां तक कि चाय की सार्वजनिक दुकानों पर भी अपने चाय के बर्तन पिताजी व उनके जैसे लोग खुद मांजते रहे पैसा देने के बावजूद। चाय का प्रसंग आया तो याद आया कि इस चुनाव में यह जुमला बहुत प्रचलित रहा। बहुत जोर–शोर से प्रचारित किया गया कि एक चाय बेचने वाला देश का प्रधानमंत्री बन रहा है। यह सुनकर आंखों में आंसू भर आये और वो स्मृतियां फिर ताजा हो गयीं। यह प्रतिक्रिया उभरी और ये बेचैनी हुई कि किसी काम के प्रति इस समाज के लोगों का संस्कार छोटे–बड़े का बना रहेगा। इस आधुनिक कहलाने वाली दुनिया व उसको बनाने का दंभ भरने वाले लोग एक 'चाय बेचने वाला' कहकर क्या सिद्ध करना चाहते हैं। यह उनकी किस मानसि. कता को दर्शाता है? दूसरी तरफ इससे भी कही महत्वपूर्ण बात जिस तरफ इस तरह की मानसिक स्थिति वालों का ध्यान कभी जाता ही नहीं कि इस देश में करोड़ों लोग अपनी सामाजिक स्थिति के कारण, जिसमें उनको निम्न दर्जे का माना जाता है; चाय की दुकान व खाने का ढाबा नहीं चला सकते। इस काम से अपने परिवार का भरण–पोषण नहीं कर सकते। यदि उन्हें यह काम करना हो तो घर–गांव इलाके से बाहर नाम बदलकर, अपनी पहचान एक आदमी छोटा–घटिया कैसे? बदलकर ये काम करना पड़ता हैं अपने गांव क्षेत्र में चाय का खुमचा व खाने का ढ़ाबा नहीं चला सकते। क्योंकि उनके हाथ की बनी चाय व खाना खाकर लोग खुद को अपवित्र करने का दुस्साहस कैसे कर सकते हैं। ऐसा करेंगे नरकगामी होने का जोखिम भला जानबूझकर कौन लेना चाहेगा। यह फार्मूला व्यापार की अन्य वस्तुओं की मालिकी के सन्दर्भ में भी लागू होता है।

यह है हमारे जनतांत्रिक समाज की स्थिति। चाय बेचने पर बहस करने वालों को इस बात का ध्यान ही नहीं आता क्योंकि उनके लिए ये प्रश्न गौण है। पर करोड़ों शोषित–वंचितों के लिए आजीविका का सम्मान दोनों का प्रश्न है। एक ऊपरी जुमला प्रचारित करने से कि चाय बेचनेवाला देश का प्रधानमंत्री बन रहा है, वोट की राजनीति तो की जा सकती है। पर इस गुणगाण की स्तुतियों में समाज की वास्तविकताओं की आह जो उश्वास भरकर दब जाती है। हमेशा के लिए दबाई नहीं जा सकती। अपने आत्मसम्मान व जीविका की इच्छा को सदियों से दबाये इस समाज के लिए लोकतंत्र व गरीबी मुक्ति के क्या मायने हैं? जरा कोई समझाए। मैंने समझने की कोशिश की। लोगों से, इस व्यवस्था के हिमायती लोगों से तो बोले ये तो भगवान के घर से बन कर आया है। पिछले जन्म के पाप–पुण्यों का फल है इत्यादि। इसका अंतिम छोर भगवान है जिसके बारे में हमको पता नहीं। वाह रे भगवान। मन में सोचा क्या भगवान जैसी कोई चीज है जो दुनिया बनाती है और कहां है उसकी फैक्ट्री। जहां इतनी घटिया सोच से चीजें बनाई जाती हैं। और यह धन्धा कब से चला आ रहा है। किसी को छोटा–घटिया, किसी को बड़ा–महान। यही काम रह गया उसका। उसके मन में क्या समता की कोई भावना नहीं। छोटा–बड़ा बनाने का ठेका ले लिया है उसने। याद आता है उपनिषद का वह श्लोक ईशावास्यंमिदंसर्व। ...। सब चीजों में ईश्वर का वास है जब सभी चीजें में ऐश्वर्य का वास है तो फिर क्या उसमें ईश्वर का वास नहीं। या कुछ ईश्वर भी कुछ ऐसे ही होते हैं। मेरे मन में भगवान के बारे में जो खूबसूरत कल्पना थी। कि भगवान बहुत खूबसूरत चीज होगी। कितना आनंद आयेगा उससे मिलकर। उसकी दृष्टि में सब समान होंगे। न ऊंचा न नीचा। वह शान्ति, विश्वास, मैत्री का साक्षात् रूप होगा। ऊपरी अवधारणा सुनकर उस कल्पना को धक्का लगा। कहीं सुना या पढ़ा कि भगवान दुष्टों का नाश करने के लिए अवतार लेते हैं। लगा काश भगवान शान्ति, मैत्री के लिए जन्म लेते। दुष्ट का नाश तो कोई दुष्ट भी कर सकता है। पर कोई दुष्ट मैत्री स्थापित कर पाया हो, ऐसा नहीं सुना। कुछ बड़ा होने पर पता चला कि भगवान भी एक चीज नहीं है। कई हैं ईश्वर है, अल्लाह है, गॉड है इत्यादि–इत्यादि। उनके भी कई और...। पर मेरी भगवान की कल्पना के नजदीक कोई बैठ न पाया। मुझे तो चाहिए था सबको समान दृष्टि से देखने वाला भगवान, दुनिया में लोगों के मनों में शान्ति स्थापना, परस्पर मैत्री, व विश्वासपूर्ण समाज की निर्मिति का वाहक भगवान। लेकिन यहां तो भगवान के नाम पर मिला द्वेष, हिंसा, वैमनस्यता, अराजकता। नहीं चाहिए ऐसा भगवान। चीत्कार उठा था मेरा मन। इस बात से भगवान के प्रति नफरत न हुई। चीत्कार उठा था मेरा मन् सब कुछ मानकर पूजते हैं; वो बेच. ारा कितना निःसहाय, निरूपया है। जैसे लोग उसे बनाते हैं वैसा बन जाता है। उसके खुद का कोई अस्तित्व नहीं, व्यकितत्व नहीं। पर इस सबका प्रकोप भाजन बनता है पूरा समाज। जब परस्पर आपस में मानव–मानव के बीच मैत्री की, विश्वास की आशा नहीं रह जाती तब वह कोई और सहारा खोजता है। उसी बड़े सहारे का नाम है, ईश्वर, अल्लाह, गॉड। इसलिए करोड़ों, गरीबों, वंचितों का सहारा है यह। दुःख, अपमान के क्षणों का सहारा। पर यह पवित्र सहारा न रहकर जब मानवीय रूप में परिवर्तित होता है तो पुनः परस्पर विद्वेष, हिंसा, ध्वंस का कारण बनता है। यही इसकी नियति, निर्मिति है। जैसे ही इस पवित्र सहारे को मनुष्य रूप में पूजना शुरू करते हैं तो वह मैत्री, विश्वास की आशा न बनकर किसी दूसरे के सहारे से टकराता है। आदमी जैसा होता है, वैसी ही सृष्टि का निर्माण करता है, ये बात अनुभवसिद्ध है। किसी खास तरह के मनुष्य रूप में चमत्कारिक ईश्वर को मानने वाले लोगों का एक कुनबा घोषित किया गया जिसे धर्म कहा गया। उसके अन्तर्गत रहने वाले लोगों में भगवान की स्वीकार्यता से कुछ नियम बने। वे परस्पर मानवीय मनों के विभाजन का कारण बन गये। कुछ लोग उच्च व कुछ पैदाइशी नीच माने जाने लगे। ये कथायें कई बार दोहराई जा चुकी हैं यहां इन्हें पुनः कहने का अर्थ यह है 'धार्मिक गरीबी'।

इस भगवान, अल्लाह गॉड की स्वीकृति से जो समाज की धार्मिक रचना बनी है उसमें करोड़ों लोग हमेशा अपमान सहने, घृणित रहने, असुरक्षा के भाव में जीने को विवश हैं। मानसिक विकास की दूरी तय करने में अक्षम हैं, अयोग्य माने जाते हैं। क्या इस 'धार्मिक गरीबी' को कोई लोकतांत्रिक सरकार मिटा सकती है? क्या यह बात भी गरीबी में नहीं आती। वंचित में नहीं आती। क्या इतिहास को रचने की बात कहने वाली सरकार मानव–मानव संबंध की कोई नई नीति–नई परिभाषा, नई अवधारणा स्थापित कर पायेगी जहां मनुष्य–मनुष्य पर भरोसा कर सके।

हमेशा यह व्यवस्था में भगवान भरोसे न जीता रहे। क्या धर्म की सर्वमान्य परिभाषा, नये समात के भगवान, मैत्री, विश्वास के भगवान को गढ़ने हेतु विभिन्न मान्यता वाले तथाकथित धार्मिक समूहों, के बीच परस्पर विश्वास,

मैत्री, शान्ति का संवाहक बने। हिंसा व एक–दूसरे को किन्हीं काल्पनिक या गैरजरूरी मान्यताओं के आधार पर द्वेष का कारण नहीं। ऐसे समाज में चाय बेचना भी गौरव की बात होगी। जहां अछूत, अपवित्र समझी जाने वाली सामाजिक इकाइयां चाय व भोजन का ढ़ाबा खोलकर आजी. विका चला सकें व आत्मसम्मान महसूस कर सकें। अन्यथा चाय पर बहस निरर्थक है। यदि ऐसा कोई ठोस एजेण्डा कार्यक्रम के तौर पर गरीबों की सरकार के पास न हो तो।

स्त्री सम्मान का प्रश्न इस प्रश्न के साथ जुड़ा है। धार्मिक गरीबी की एक जीती जागती मिसाल स्त्री है जो पुरूष से अपनी शारीरिक बनावट की भिन्नता के चलते दोयम दर्जे की नागरिक रहने के लिए बाध्य बनाई गई है। हमारा धर्म स्त्री में देवी देख लेता है, मां देख लेता है, कन्या देख लेता है। मित्र नहीं देख सकता। जैसे ही स्त्री देवी होती है, मां होती है, कन्या होती है वैसे ही पूजनीय हो जाती है। सामान्य मनुष्य नहीं रहती। असाधारण, अद्धितीय हो जाती है। जो पूजनीय है उससे बराबरी का प्रश्न ही कहां उठता है। बराबरी का सवाल खड़ा होता है मित्र संबंध में जहां स्त्री पहले दासी थी आज बाजार में भोग की वस्तु की तरह समझने की पुरूष मानसिकता से बंधी हुई। जगतगुरू से लेकर महानता की सारी उपाधियां पुरूषों की स्वंय के लिए बनायी हुई हैं।

आज स्त्री, पुरूष से इतर अपनी पहचान चाहती है, अपनी अस्मिता अपनी गरिमा के साथ जीना चाहती है। अपनी अस्मिता व समाज में बराबरी की भागीदारी ढूंडने को तत्पर है पर हमारी समाज व्यवस्था में ये आश्वस्ति नहीं है कि कोई स्त्री सुरक्षा व संबंध के भाव से अपने कार्यक्षेत्र में विचरण कर सके। गांधीजी ने कहा था कि भारत को सच्ची आजादी तब मिलेगी जब स्त्री को आजादी मिलेगी। और यह देश सच्चे अर्थों में तब आजाद होगा जब कोई स्त्री बारह बजे रात भी घर से बाहर निकलकर निडर होकर चल सकेगी।

समाज–धर्म की वे कौन सी मान्यताएं हैं जिनके चलते स्त्री को उसकी अपनी वास्तविक पहचान समाज–धर्म की वे कौन सी मान्यताएं हैं जिनके चलते स्त्री को उसकी अपनी वास्तविकता पहचान के लिए संघर्ष करना पड़ता है, अपनी आत्मछवि के लिए। स्त्री के स्व की पहचान व स्त्री पुरूष के संबंध को पुनर्परिभाषित करने हेतु वर्तमान कल्याणकारी सरकार के पास क्या नीति है। या ये सब समाज पर छोड़ दिया है। महिलाओं को कानूनन जो हक मिले हैं वहां भी हमारी वर्षों पुरानी मान्यतायें संस्कार कहां आड़े आते हैं। स्त्रियां कामका. जी के रूप में माहिर जरूर हो रही हैं पर देश समाज की नीतियों को तय करने, समाज का दर्शन गढ़ने

समाज–धर्म की वे कौन सी मान्यताएं हैं जिनके चलते स्त्री को उसकी अपनी वास्तविक पहचान समाज–धर्म की वे कौन सी मान्यताएं हैं जिनके चलते स्त्री को उसकी अपनी वास्तविकता पहचान के लिए संघर्ष करना पड़ता है, अपनी आत्मछवि के लिए। स्त्री के स्व की पहचान व स्त्री पुरूष के संबंध को पुनर्परिभाषित करने हेतु वर्तमान कल्याणकारी सरकार के पास क्या नीति है। या ये सब समाज पर छोड़ दिया है। महिलाओं को कानूनन जो हक मिले हैं वहां भी हमारी वर्षों पुरानी मान्यतायें संस्कार कहां आड़े आते हैं।

जैसे मौलिक क्रियाकलापों में स्त्री की पूर्ण भागीदारी का दौर कब शुरू होगा? परिवार, गांव, समाज, देश की नीतियां, जीवन बंदोबस्तों, आर्थिक–सांस्कृतिक–राजनीतिक व्यवस्थाओं का स्वरूप कैसा हो? इस सवाल पर स्त्री की मौलिक राय व निर्णयात्मक सोच का प्रादुर्भाव हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था में कब होगा? क्या इसका कोई एजेण्डा गरीबों की सरकार के पास है? स्त्री–पुरूष का संबंध क्या हो? किन आधारों पर हो? यह आज की छिन्न–भिन्न होती जा रही पारिवारिक–सामाजिक व्यवस्था में कठिन सवाल है। जिसका कोई सर्वस्वीकृत समाधान निकालना आवश्यक है। यह स्त्री की अपनी अस्मिता–गरिमा की पहचान के बिना संभव नहीं। अन्यथा एक संबंध विहीन समाज की तरफ बढ़ना हमारी नियति है। एक लोकतांत्रिक समाज में स्त्री–पुरूष संबंध का क्या अर्थ है उसके क्या आयाम हैं? इसकी क्या कोई ठोस सोच कल्याणकारी सरकार के पास है? जिससे हम ये कहें कि हम 'संबंधों की गरीबी से' मुक्ति पा जायेंगे। परस्पर संबंध जीने में गरीबी महसूस नहीं करेंगे। स्त्री के प्रति समाज का नजरिया बदलने की कानूनन सुरक्षा के अलावा अन्य कोई नीति है क्या? उनको आत्मसम्मान–आत्मगौरव के साथ निर्णयों में बराबरी व मौलिक रूप से चिन्तन में भागीदारी हेतु जटिल सवालों पर राय हेतु कोई प्रक्रिया अगले कुछ वर्षों के लिए है क्या? यहां गौरबतलब है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में वोट के जरिये प्रतिनिधि (महिला प्रतिनिधि) का चुनना एक बात है। भागीदारी दूसरी बात। वह भी सोच व नीतियों के संदर्भ में निर्णयात्मक भागीदारी। जब तक ये प्रक्रियायें नहीं चलाई जायेंगी तब तक स्त्री पुरूष समाज में असुरक्षित है। दोयम दर्जे की नागरिकता के लिए बाध्य हैं। एक लोकतांत्रिक समाज हेतु इन जटिल प्रक्रियाओं पर संवाद आवश्यक है। अन्यथा बात. चीत में आप तो मां हैं, देवी हैं का पारंपरिक अलाप कर समाज में तत्संबंधी जघन्य अपराधों पर मूकदर्शक बने रहना हमारी नियति बन जायेगी। गरीबी का एक और आलम है जो हमें अपनी जीविका, खाने–कमाने के तरीकों की तरफ सोचने को मजबूर करता है। कहा जाता है कि कभी हिन्दुस्तान की अर्थव्यवस्था ग्राम उद्योग आधारित थी। घर–घर उद्योग–धन्धे थे। गांव की जरूरत की वस्तुएं गाव में ही उपलब्ध–निर्मित कर ली जाती थी। लोगों के काम करने के अपने स्वायत्त तरीके थे। प्रकृति की व्यवस्था पर आधारित तकनीकी थी। यंत्रों का भी ऐसा विकास किया गया कि आदमी निकम्मे न रह जायें साथ ही प्रकृति की चक्रीय व्यवस्था को कोई क्षति न पहुंचे। आधुनिकता के नाम पर यंत्रों द्वारा फैले कारोबार के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से गांवों का कच्चा माल लुटा व उत्पादन का केन्द्रीयकरण शुरू होने से हाथ व अपनी पहुंच के यंत्रों द्वारा संचालित ग्रामीणों के हुनर, काम छिन गये। जिन लोगों की बदौलत हिन्दुस्तान का उद्योग दुनिया भर में परचम लहरा रहा था वे लोग रोजगार विहीन हो गये।

खेती, औद्योगीकरण की केन्द्रीकृत नीति से बर्बाद हो गयी। नेहरू जी के आधुनिक भारत के औद्योगिक मंदिर अब भी ग्रामीण भारत को रौंद रहे हैं। गांव में जीविका के साधन छिनने लगे तो लोग गांवों से पलायन को मजबूर विवश हो गये। आज गांवों की ये स्थिति है कि वहां लोग मजबूरी में रह रहे हैं। जहां–तहां से लोग रोजगार के लिए शहरों में झुग्गियों में जीवन यापन करने को बाध्य हैं। लोग खेती छोड़कर शहरों में छोटी–मोटी नौकरी की खोज में जा रहे हैं। रोजगार तो छिन ही रहा है, औद्योग. ीकरण के नाम पर, विकास के नाम पर जमीनें भी अधिग्रहित हो रही हैं, छिन रही हैं। लगातार गांव खाली होने का सिलसिला जारी है। उद्योग गांव की कुर्बानी पर खड़े हैं। परिणाम शहर (बाजार) की तरफ लोगों का रूख है। आज याद आ रहा है कबीर का दोहा, "कबिरा खड़ा बाजार में, लिया लकुटिया हाथ, जो घर फूकों आपनो, चलो हमारे साथ।" आज शहरों के वातावरण में घर–गांव–पड़ोस सब फूंके हुए लोग भर रहे हैं। अब ये किसकी दया है कि ये लोग अपने काम–धन्धे, घर–बार, गांव, समाज से दूर हो गये, किसकी बदौलत? देश ही 8 प्रतिशत विकास दर किसकी है? किसके लिए है? गांवों को बर्बाद करने के लिए। लोगों को उजाड़कर गन्दी बस्तियों में धकेलने के लिए। क्या हिन्दुस्तान की जिस महान सांस्कृतिक विरासत का राग हम लोग अलापते हैं वो शहर के दमघोटूं वातावरण में संभव है? जहां मनुष्य का रिश्ता मनुष्य से व्यावसायिक भर है। इस सबके बीच इस बात को सुनकर तरस आता है कि हमारा विकास मॉडल है। पंजाब का विकास मॉडल, गुजरात का विकास मॉडल, इण्डिया का विकास मॉडल। अंततः अमेरिका का विकास मॉडल। इससे भी और आगे जाएं तो यह फलाने आदमी का विकास मॉडल। तो एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि किसका हो रहा है विकास? कैसा होता है किकसित आदमी, विकसित समाज, विकसित देश? कौन लोग विकसित हो चुके हैं मैं जानना चाहता हूं कि कैसे होते हैं विकसित लोग बस मनुष्य हूं ना इसलिए मानवीय जिज्ञासा स्वाभाविक है उनका मॉडल जानना भी जरूरी है ताकि हम भी तर जायें। मैंने सुना कि सबसे पहले विकास शब्द को जैसे आज इस्तेमाल किया जाता है, उस अर्थ में पहली बार 1949 में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट जी ने किया था कि हम 'डेवलप्ड कंट्री' हैं बाकी सब. ..। तब से ये तोता रटंत शोर चारों तरफ मच गया कि हमें विकसित होना है। यह है हिन्दुस्तान की आत्मछवि। हमको किसी और जैसा ही होना है तो ये रोना बंद करना होगा कि हम विश्वगुरू हैं हमें दुनिया को रास्ता दिखाना है। किसी को बड़ा मानकर व्यक्ति राष्ट्रहीन भावना में जाता है, आत्मगौरव में नहीं। हम अविकसित हैं इस हीन भावना से क्या कोई विकसित हो सकता है। हिन्दुस्तान में विकास शब्द का कभी एकांगी इस्तेमाल नहीं किया गया। मनुष्य सृष्टि की बहुआयामी इकाई है। इसलिए चीजें हमेशा किसी संदर्भ, किसी आयाम में जुड़कर अभिव्यक्त होती हैं। विकास के संदर्भ में यह मानसिक विकास, आध्यात्मिक विकास, शारीरिक विकास, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक विकास इन आयामों के साथ जुड़कर इस्तेमाल होता रहा है। हम पूछना चाहते हैं कि आप इस देश के वासियों का कौन सा विकास करना चाहते हैं और उसके लिए आपकी क्या योजना है? हमारे विकास के मॉडल किसी की नकल से निकलते हैं या अपनी धरती की खोज से। दुनिया की महान खोजों का गढ़ रही इस धरती के लोगों के लिए सवाल है कि क्या 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेज मात खा गये होते या 1857 की क्रान्ति सफल हो गयी होती या थकी हारी कांग्रेस ने अंग्रेजियत की व्यवस्था के सम्मुख 1947 में घुटने न टेक दिये होते, अपनी व्यवस्थाओं पर पुनर्विचार किया होता तो भी हिन्दुस्तान की आधुनिकता या विकास मॉडल या मार्डनिटी ऐसी ही होती जैसी आज पश्चिमी देशों की असंभव नकल पर चल रही है। या अपने अनुसार हमने अपनी व्यवस्थाओं में जरूरी व संभव सुधार किये होते जीने के नये तरीके दुनिया को सिखाये होते? क्या पिछले 50 साल में जिस तरह से यहां की व्यवस्थाओं; शिक्षा, उद्योग, न्याय, भाषा, तकनीकी इत्यादि का ध्वंस हुआ है। इस देश में जो औपनिवेशिक भाषा–तकनीकी–संस्कृति का दबदबा बढ़ा है। अपनी भाषा–तकनीकी–संस्कृति के प्रति हीन भावना आयी है। इस सबसे देशी व्यवस्थाओं के ध्वंस होने के चलते जो आर्थिक–मानसिक गरीबी आयी है। क्या हम अपनी भावी सरकार से ये अपेक्षा कर सकते हैं कि वह 21वीं सदी के कोलाहल के बीच (भारतीय कालगणना के अनुसार हम 26वीं–27वीं सदी में चल रहे हैं) अठारहवीं सदी में खड़े होकर फिर से अपने देश को देश–समझकर यहां की व्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण कर एक देशी आधुनि. कता का मॉडल बनाने की ओर एक कदम बढ़ायेगी। जो किसी की नकल पर नहीं बल्कि हमारे देश की साझी विरासत के आधार पर खड़ा होगा। ऐसे लोकतांत्रिक मॉडल जिस पर इस देश का हर नागरिक गौरवान्वित महसूस कर सकेगा। तभी भावी प्रधानमंत्री जी के शपथ ग्रहण समारोह से पहले गांधी की समाधि राजघाट पर जाने का साफल्य प्राप्त होगा। अन्यथा राजघाट पर तो रोज ही हजारों लोग माथा टेकते हैं। गांधी का सपना उसी देशी व्यवस्था का साझा सपना है। गांधी का विकास मॉडल, जिसमें विकास अकेले नहीं आता, आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक संदर्भों के साथ आता है। और उनके इस मॉडल की, देशी आधुनिकता की बुनियाद गांव हैं। गांव उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता। इसलिए आज का गांव किसी भी तरह वह गांव नहीं है लंबे समय से उसमें कई तरह की अनावश्यक बुराइयां घर कर गयी हैं। इसके प्रति गांधी सचेत थे। उन्होंने कहा कि करोड़ों लोगों को शहरों, महलों में नहीं बल्कि गांव में झोपड़ियों में रहना होगा। शहरों में हिंसा व असत्य का सहारा लिये बिना रहना संभव ही नहीं। प्राचीन भारतीय गांव, भारतीय शहरों की जरूरत पैदा करते थे। गरीबी तब आई जब हमारे शहर विदेशी माल के बाजार बनने लगे। विदेश का सस्ता, भद्दा माल गांव में भरकर उन्हें चूसने लगे। शहर गांव के पोषण नहीं बल्कि शोषण पर खड़े होते गये। गांव से मिली शक्ति व पोषण का बदला शोषण से, शहर विदेशी आधिपत्य की देन है अन्यथा भारत लाखों गांवों का देश था। स्वायत्त, स्वावलंबी, आंचलिक स्वायत्त सत्ताओं से परिपूर्ण। कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध में 100 राजाओं ने भाग लिया था। इससे स्पष्ट है कि आंच. लिकतायें अपनी स्वायत्तताओं के साथ फल–फूल रही थीं

एक गरीब की विनम्र चुनौती

भौगोलिक अंचलों के तहत व्यवस्थायें चल रही थी। वर्तमान की तरह केन्द्रीकृत व्यवस्था नहीं थी। भारत की विविधता, नदी घाटी संस्कृति, आंचलिकता पर आधारित थी। इसलिए गांधी के गांव का यही देशी सपना था। उन्होंने नेहरू जी को समझाने की कोशिश की पर असफल रहे। गांधी के सपनों का गांव था जिमसें तमाम जरूरत के सामान गांव की परिधि या आस–पास के परिवेश में उपलब्ध हो, कपड़ा, कपास, अनाज, खेल–कूद, मनो. रंजन के साधनों की व्यवस्था हो। आर्थिक लाभकारी फसलें हों पर गांजा, तंबाकू, अफीम नहीं। हर गांव में नाटकशाला, पाठशाला, सभा भवन हों गांव की आबादी 1000 आदमी। पर्याप्त प्रकाश, स्वच्छता, हवा की व्यवस्था। साग, सब्जी, मवेशियों हेतु जमीन। चरागाह, गलियां, कुंए,, पूजास्थल सबके लिए खुले स्वच्छ वातावरण में निर्मित। औद्योगिक इकाइयां, शिक्षा, डेरी उद्योग की व्यवस्था ग्राम पंचायत के अधीन। आपसी झगड़ों का निपटारा ग्राम पंचायत करेगी।

ऐसे गांव में बुद्धि व आत्मा को संतुष्ट करने वाली कला, कारीगरी के शिल्पी होंगे, कवि, चित्रकार, भाषाविद्, शरीर संबंधी जानकार, शोधार्थी होंगे। गांव आज की तरह उजड़ा कूड़े–कचरे का ढेर नहीं बल्कि सुन्दर बगी. चों–खलिहानों से भरा होगा। जिन यंत्रों को साधारण बुद्धि से संचालित किया जा सकता है, स्वंय निर्माण किया जा सकता है उनको प्राथमिकता होगी। स्त्री–पुरूष दोनों की बराबर भागीदारी होगी।

ऐसे गांव में कोई निकम्मा न होगा। इत्यादि. ..ये था हिन्दुस्तान के सपने का गांव। इस देश की देशी आधुनिकता की बुनियाद। ऐसे गांव का कोई शोषण नहीं कर सकता था। इस जगह से शुरू हो सकती थी हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक क्रांति की शुरूआत। जिसके लिए कभी यह देश विश्व में जाना जाता था। इसके लिए कठिन साधना, सेवाभाव, धैर्य की आवश्यकता थी। पर सत्ता प्राप्त व्यक्ति के पास ये कहां? इसलिए गांधीजी ने कहा था आजादी प्राप्ति के बाद कांग्रेस को पार्टी के तौर पर अपना विसर्जन कर देना चाहिए और गांव–गांव में सेवक बनकर विनम्र भाव से इस देश को वास्तविक आजादी दिलाने के लिए काम शुरू कर देना चाहिए। सेवक बनकर न कि साहब बनकर। मगर यह हो न सका। गांधी अपने सपने के साथ विदा हो गये। पर साझे सपने टूटा नहीं करते। किसी न किसी रूप में मौजूद रहते हैं। आज जब आधुनिकता के नाम पर तथाकथित विकास की होड़ में प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करने से जब पानी, हवा, धरती, मिट्टी, पानी प्रकृति प्रदत्त उपहारस्वरूप वस्तुओं का आभाव व प्रदूषण महसूस होने लगा है। मनुष्य–मनुष्य व मनुष्य से प्रकृति, समाज के तमाम संबंधों को एक खास दिशा में संचालित किया जा रहा है।

इलैक्ट्रॉनिक्स मीडिया व इस व्यवस्था के पैरोकार लाभार्थी–स्वार्थी तत्वों के पैसों पर आधारित इंटरनेट के इस्तेमाल से सूचनाओं के जरिये लोगों को 'बाजार का स्वर्ग; उपभोग की वस्तुओं का स्वर्ग साक्षात धरती पर उतारने का वादा कर लोगों के दिमाग को सोचने की दिशा में कुंद किया जा रहा है। ऐसे समय में आर्थिक समता, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता व सांस्कृतिक धाराओं तथा मनुष्य की गरिमा की बात करना जितना कठिन हो गया है उतना ही जरूरी भी हो गया है। इस बात का प्रतिपादन करना कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का लक्ष्य सारी दुनिया की वस्तुओं को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जरिये बाजार में इक्ट्ठा कर भोगने का नहीं बल्कि मानवीय चेतना के माध्यम से सांस्कृतिक एकता की स्थापना करना है।

इन तमाम जटिल परिस्थितियों के बीच से स्वराज का रास्ता निकालना है तो वाकई आधुनिक होने की आवश्यकता पड़ेगी जो देशी व्यवस्थाओं पर खड़ी तो होगी लेकिन उसकी हर चीज को मानने के लिए बाध्य नहीं होगी। पर बाजारू आधुनिकता जिसको मॉर्डनिटी कहा जाता है वो तो चंद दिनों की मेहमान है क्योंकि बाजार की कोई भी वस्तु स्थायी नहीं होती यह उसमें लिखी 'एक्सपायर डेट' से ही प्रमाणित हो जाता है। इसी तरह वर्तमान की मॉर्डनिटी की भी एक्सपाइरिंग डेट उसमें अंकित है। अब सवाल उठता है कि स्वराज क्या है? भारतीय आधुनिकता क्या है? इन तमाम सवालों का जवाब ऊपर जितनी तरह की गरीबियों का जिक्र किया गया है उन पर स्वस्थ प्रक्रियायें चलाने से मिलेगा। यह गौरतलब है कि अपनी भाषाओं, संस्कृति, गाय, गंगा, जाति, स्त्री, परिवार, गांव, समाज के बारे में नये सिरे से सोचने व व्यवस्थाओं का निर्माण करने से इस आधुनिकता का जन्म होगा। आज प्राथमिकता ग्राम व स्वराज के लिए लोक को तैयार करना एक काम। गांधी का ये काम अधूरा रह गया है। लोक स्वराज के लिए तैयार होगा तभी स्वराज की कल्पना साकार होगी। आज लोग मानस तैयार नहीं है तैयार होता तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सामान न खरीदता, न बेचता, उनमें नौकरी न तलाशता। शराब के लिए वोट न डालता। बेकारी की शिक्षा में बच्चों को न झोंकता। किन्हीं आधारों पर जनसमर्थन जुटाना लोगों में आक्रोश भरना एक बात है, स्वराज यानी वास्तविक लोकतंत्र के लिए लोगों को तैयार करना बिल्कुल जुदा बात। क्या लोकतंत्र की धुरी लोक को स्वस्थ प्रक्रियाओं के जरिये हमारी कल्याणकारी सरकार स्वराज की तैयारी के लिए कदम बढ़ाने की शुरूआत कर सकती है? या अब भी इस वहम में हैं कि प्रकृति की लूट व मानव के अभूतपूर्व शोषण पर टिका वर्तमान विकासमान, धरा पर काल्पनिक स्वर्ग का भान कराने वाली तथाकथित मॉडर्न व्यवस्था के चलते हिन्दुस्तान विकसित देश कहलायेगा। या कि अब पीछे लौटा नहीं जा सकता। यहां सवाल आगे–पीछे लौटने का नहीं बल्कि मानव मात्र ही नहीं सृष्टि पर समस्त जीवन की पवित्रता का है मानव की गरिमा का है। मनुष्य की कल्याणकारी संभावनाओं उसके आत्मसम्मान का अस्मिता का है जिसे तथाकथित आधुनिक व्यवस्था रौंदती जा रही है। आज सवाल अपनी आवश्यकताओं को पहचानने का है। गरीबी मुक्ति का रास्ता इन्हीं सवालों से होकर जाता है। मनुष्य को पलायन करने की स्वतंत्रता है पर यह समाधान तो नहीं है। वर्तमान लोकतांत्रिक सरकार के पास अवसर हैं कि वह इस जिम्मेदारी का निर्वहन कर वाकई इसे ऐतिहासिक बना दे। जीत–हार ऐतिहासिक नहीं होती; ऐतिहासिक होता है 'सृजन'। 2019 में राजग के कार्यकाल के 5 वर्ष पूरे होंगे। गांधीजी को उसी साल 150 वर्ष पूरे होंगे। वर्तमान सरकार के प्रधानमंत्री उसी प्रदेश से हैं जहां गांधी जन्मे। कभी कृष्ण ने उस प्रदेश को अपनी कर्म स्थली बनाया आशा है इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को वे ऐतिहासिक बनाकर गांधी को सच्ची श्रद्धांजली देंगे। हम भी कह पायेंगे कि 'अच्छे दिन आ रहे हैं'।

लेखक समाजसेवी और गांधीवादी चिंतक हैं।

जिंदा दिल इरोम शर्मिला

खा *मोश बर्फ की शिला पर, एक जलती ज्वाला अथक, अविरल–अविराम साल–दर–साल, नहीं कोई विश्राम, बंदूक के साये में बेरंग–बदरंग जिंदगी, को कोई कैसे करे सलाम, यह मौत को नहीं, जिंदगी को है पैगाम, काश समझ सकते, हमारे सोये हुए हुक्मरान*–सरला माहेश्वरी

GANNON DUNKERLEY & CO.LTD.
(An ISO 9001-2000 Company)

REGISTERED OFFICE

NEW EXCELSIOR BUILDING, 3RD FLOOR, A.K. NAYAK MARG
FORT, MUMBAI-400001
TEL:91-22-22051231, FAX-91-22-22051232
Website : gannondunkerley.com
E-mail : gdho1@mtnl.net.in

GANNONS ARE SPECIALISTS IN INDUSTRIAL STRUCTURES, ROADS, BRIDGES (RCC AND PRESTRESSED CONCRCETE), RAILWAY TRACKS, THERMAL POWER, FERTILIZER, CHEMICAL, PAPER AND CEMENT PLANTS, WATER & WASTE WATER TREATMENT PLANTS, PILING FOUNDATION & FOUNDATION ENGINEERIG.

GANNONS ARE ALSO PIONEERS IN MATERIAL HANDELING WORKS, MANUFACTURE OF PRESTRESSED CONCRETE SLEEPERS, ERECTION OF MECHANICAL EQUIPMENTS & PIPING AND SUPPLY OF TEXTILE MACHINERY AND LIGHT ENGINEERING ITEMS

OFFICES AT :
AHMEDABAD - CHENNAI - COIMBATORE - HYDERABAD - KOLKATA
MUMBAI - NEW DELHI

बाजारवाद और अंधराष्ट्रवाद का नाम है क्रिकेट

सुनील कुमार

भारत का राष्ट्रीय खेल क्रिकट नहीं है, लेकिन इस खेल को प्रचार–प्रसार कर राष्ट्रीय खेल जैसा बना दिया गया है। यह खेल पूंजीपतियों को विज्ञापन करने का पूरा मौका देता है। हर छठी बाल (ओवर) समाप्त होने के बाद, चौके छक्के लगने के बाद खिलाड़ी हाउट होने और ड्रिंक, टी ब्रेक लंच, टाइम आउट होने पर विज्ञापन प्रसारित करने के पर्याप्त मौके होते हैं। दूसरे किसी खेल में ऐसा मौका नहीं होता। इसलिए बाजार ने इस खेल को स्वीकार कर लिया, जिसमें इलेकट्रॉनिक मीडिया की भी अच्छी कमाई हो जाती है। आम जनता को इस खेल में सालों साल फांसकर रखने के लिए आईपीएल, चैंपियन लीग, वन–डे, टेस्ट मैच, चैंपियन ट्रॉफी, टी–20 वर्ल्ड कप जैसे खेल कराए जाते रहते हैं।

खेल के साथ साथ अष्लीता परा. सा जाने लगा है, जैसा कि आज आईपीएल या चैंपियन लीग मैचों के दौरान चियर गर्ल्स के नाम पर प्रदर्शित किया जाता है। यह ऐसा खेल है जहां खिलाड़ी देश के लिए नहीं, बल्कि वह अपने और संस्था (बीसीसीआई एक स्वायत सेवी संस्था है) के लिए खेलता है। खिलाड़ी कंपनियों से करोड़ों रूपये लेकर ग्राउंड में और ग्राउंड के बाहर विज्ञापन करते हैं। बैट, जूते, ड्रेस सभी किसी न किसी कंपनी का प्रचार करते हैं और इसके लिए

कमांक	खिलाड़ी का नाम	सेलरी से आय (करोड़ रू)	विज्ञापन से आय (करोड़ रू)	कुल आय (करोड़ रू)
1	महेंद्रसिंह धोनी	21.35	170.80	192.50
2	सचिन तेंदुलकर	24.40	109.80	134.20
3	विरोट कोहली	18.30	54.90	73.20
4	गौतम गंभीर	24.40 ?	24.40	48.80
5	विरेंद्र सहवाग	18.30	24.40	42.70

कंपनियां इनको मोटी रकम मुहैया कराती हैं। इस तरह के उत्कृष्ठ कार्य करने के लिए भारत रत्न तक दिया जाने लगा है। क्रिकेटरों की साल की कमाई अरबों–खरबों में होने लगी है, जिसे इस तालिका में देख सकते हैं –

गौर करें कि तालिका जो आंकड़े दिए गए हैं ये 1 डॉर 61 रूपये के आंकड़े पर आधारित है।

यह देशभक्त टैक्स से बचने के लिए अपने को एक्टर बताकर टैक्स में छूट का लाभ भी रठा लेते हैं। हम इस तालिका में देख सकते हैं कि ये खिलाड़ी खेल से ज्यादा विज्ञापन में पैसे कमाते हैं। पैसे कमाने के लिए ये खिलाड़ी किसी तरह के विज्ञापन करने में नहीं किचकते हैं। वे जिस ब्रांड का विज्ञापन कर रहे हैं उसकी गुणवत्ता जानने की कोशिश भी नहीं करते। उस ब्रांड का स्वास्थ्य और समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी भी चिंता नहीं करते। क्रिकेट टीम जिस सहारा कंपनी के सिंबल वाली ड्रेस का इस्तेमाल करती है उस कंपनी के मालिक को आम जनता के 24 हजार करोड़ रूपये नहीं लौटाने के कारण सुप्रीम कोर्ट ने जेल भेजा हुआ है। बीसीसीआई और आईसीसी को भी इससे कोई लेना–देना नहीं है कि ये खिलाड़ी आम लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं या ऐसे कंपनी के ड्रेस पहन रहे हैं जो आम जनता की गाढ़ी कमाई लूट रही है। आप पूंजीपतियों के लिए बाजार बना रहे हैं तो आप देशभक्त हैं और सबसे ज्यादा करूणामय इंसान हैं। लेकिन जब एक क्रिकेटर मानवता बचाने और लोगों के अधिकार दिलाने वाला रिस्ट बैंड पहनता है तो उस पर आईसीसी के नियमों का उल्लंघन करने की बात होने लगती है और उसके रिस्ट बैंड को निकलवा दिया जाता है।

गाजा में इस्रायल द्वारा भवनों, स्कूलों, अस्पतालों के निशाना बनाकर हजारों बेगुनाहों का कत्ल किया जा रहा है, जिसका विरोध पूरी दुनिया में हो रहा है। इसी विरोध की संस्कृति को आगे बढ़ाते हुए इंग्लैंड का एक खिलाड़ी मोइन अली ने साउथंपटन टेस्ट मैचे (भारत –इंग्लैंड का तीसरा टेस्ट मैच) के दौरान "फ्री फिलीस्तीन" "सेव गाजा" लिखा हुआ रिस्ट बैंड पहन रखा था, जिस पर आईसीसी ने एतराज जताया है और इस तरह रिस्ट पहनने पर रोक लगा दी।

1965 में भारत–पाकिस्तान युद्ध के समय इंग्लैंड से भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान मंसूरी अली खां कप्तान मंसूर अली खां पटौती और पाकिस्तान टीम क्रिकेट के कप्तान हनीफ मुहम्मद ने अपनी–अपनी सरकारों को एक सयुंक्त टेलीग्राम भेजा और लिखा कि "हमें भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध छिड़ने पर गहरा अफसोस है... हमें उम्मीद है कि आप आपस में मिलकर एक दोस्ताना हल ढूंढे लेंगे"। उस समय क्रिकेट पर

बाजारवाद का इतना असर नहीं हुआ था, नहीं तो इस टेलीग्राम को भी प्रतिबंधित कर दिया गया होता। क्रिकेट आज खेल नहीं, बाजारवाद और अंधराष्ट्रवाद फैलाने का माध्यम बन गया है। क्रिकेटर उत्पाद बेचते हुए दिखते हैं। उसी तरह मीडिया खेल के नाम पर योद्धोन्माद शैली में खबरें बताता है और अंधराष्ट्रवाद को बढ़ावा दे रहा है। जीत के बाद मीडिया में "चारों खाने चीत, लंका फतह कर लिया, षेर के जबड़े से जीत को छीना, पाकिस्तान को धुल चटाया" इत्यादी खबरें अखबार के प्रथम पेज पर छपी हुई मिलती है। मीडिया लोगों को इन झूठे देशभक्तों की दिलेरी कहानियां सुनाती नहीं थकती। ऐसे खबरों के आसपास क्रिकेटरों के महंगे विज्ञापन भी छपे होते हैं। जीत वाले दिन तो विज्ञापन का रेट भी बढ़ जाता है। विज्ञापन और अंधराष्ट्रवाद का नाम है क्रिकेट।

अनंतमूर्ति की मौत पर जश्न औछी मानसिकता का धोतक

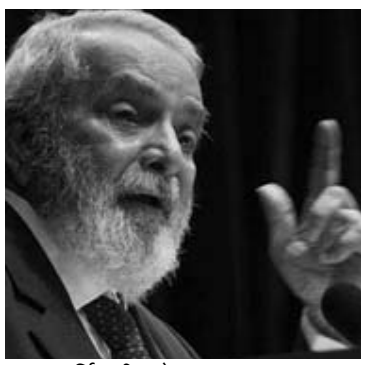

अनंतमूर्ति की मौत पर भाजपा समेत हिंदुवादी संगठनों ने जिस तरह से जश्न मनाया, उससे हिंदुत्व की साख को ही झटका लगा है। एक ऐसे साहित्यकार जिन्हें ज्ञानपीठ और पद्मभूषण जैसे अवार्ड से नवाजा गया हो, की मौत पर बीजेपी, हिंदू जागरण वैदिक के कार्यकर्ताओं द्वारा पटाखे फोड़कर जश्न मनाने का वाकया दिल–दिमाग को झकझौर देने वाला है। यकीन नहीं होता कि जिस देश में हम रह रहे है और जिस धर्म में पैदा हुए, उसमें ऐसे लोग भी हैं, जो किसी के हित चिंतक, पिता, पति के मरने पर पटाखे फोड़कर जश्न मनाते हैं। सभ्यता और संस्कृति की बात करने वालों को इस घटना के बाद शर्म आनी चाहिए। वैचारिक स्तर पर मतभेद हो सकते हैं, जिसका जवाब उसी हिसाब से दिया जाना चाहिए। अभिव्यक्ति का अधिकार हरेक नागरिक को संविधान ने दिया है। मगर, मौत पर जहां लोग मातम में होते हैं, वहीं जश्न की खबर आए तो शर्म आती है। यह हमारी हिंदू संस्कृति पर कलंक है। हमारे हिंदू धर्म के ठेकेदार, झंडावरदार इतनी तुच्छ सोच के हो गए हैं यह जानकर हैरानी हो रही है। मजेदार बात यह है कि महान लेखक की मौत पर एक तरफ जहां देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी शोक व्यक्त करते हुए अनंतमूर्ति की मौत को कन्नड़ साहित्य के लिए भारी नुकसान बता रहे थे, वहीं उनकी पार्टी के कार्यकर्ता सड़कों पर उतरकर खुशी में झूमते हुए पटाखे फोड़ रहे थे। यह भाजपा की दोहरी नीति का ही नजीता है। जिसकी बदौलत उनकी उल्टी गिनती शुरू हो गई है। बहरहाल, दोषियों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर पुलिस ने कईयों को पकड़ा है। उन्हें सजा भी होगी इसकी गुंजाइश कम ही है। उल्टा कहीं मुज्जफरनगर के संगीत सोम की तरह बीजेपी अपने इन दंगाइयों को तरक्की न दे दें। मगर, हमारे तथाकथित हिंदुवादी संगठनों ने अपना जो औछी मानसिकता दिखाई है, उसकी मिशाल दी जाएगी।

छत्तीसगढ़ में जारी है पुलिस का दमन

छत्तीसगढ में किसी भी पत्रकार के सोरी के पास पहुंचनते ही दंतेवाड़ा में वहां की पुलिस द्वारा सिपाहियों से भरी जीपें सोनी के घर पर खड़ी कर दी जाती हैं। ताकि सोनी सोरी डर जाए और पत्रकारों को लेकर किसी पीड़ित आदिवासी से मिलने न ला सकें।

सोनी को हर हते थाने में अपनी हाजिरी लगानी पड़ती है सोनी ने अपने साथ हुई प्रतारणा का जो केस उस बदमाश अधिकारी पर लगाया था, पिछले दो साले से उसपर कोई सुनवाई नहीं हुई है।

बाल अपराध की जड़ सामाजिक विसंगतियां

बुनियादी सुविधा–शिक्षा को बढ़ावा और शोषण, दमन खत्म करना होगा

हाल ही में मोदी सरकार के मंत्रिमंडल ने बाल अपराधियों की उम्र की सीमा को 18 से कम करके 16 तक कर दिया है। इसके बाद महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने लोकसभा में 12 अगस्त को किशोर न्याय विधेयक पेष किया है। तर्क दिया जा रहा है कि किशोर न्याय अधिनियम 2000 के तहत मौजूद व्यवस्था और प्रावधान इस आयु वर्ग के बाल अपराधियों से निपटने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। दिल्ली सामूहिक बलात्कार के नाबालिग दोषी को हुई तीन साल की सजा के आधार पर तर्क दिया जा रहा है कि कोई भी नाबालिग जब बालिग जैसे अपराध (सेक्स, हत्या) करता है तो वह नाबालिग नहीं रहता है। उसे अपने अपराध के विषय में पता होता है, इसलिए उसका अपराध किशोर न्याय अधिनियम की श्रेणी में नहीं आता है। मंत्रिमंडल के फैसले में कहा गया है कि इस तरह के केस को जूवेनाइल कोर्ट चाहे तो अपराधिक कोर्ट में भेज सकता है, जिसमें मृत्यु दंड या आजीवन कारावास नहीं दिया जा सकता है।

इस तरह के कानून अमेरिका में हैं और भारत उसी मॉडल को अपना रहा है। अमेरिका में जेल जाने वाले किशोर जब जेल से बाहर आते हैं तो उनमें 80 प्रतिशत अपराध करते हैं। भारत में इस तरह का कोई रिकॉर्ड सरकार के पास नहीं है। लेकिन बाल अधिकारों के लिए काम करने वाले अधिवक्ता आनंद आस्थाना के अनुसार उनके क्लाइंट के मात्र 10 प्रतिशत ही बाद में चोरी और डकैती जैसे अपराध में लिप्त हुए हैं। उन्होंने तीन से चार हजार किषोर अधिनियम के तहत केस लड़े हैं।

भारत में बाल अपराध को हम तालिका 1 और 2 में देख सकते हैं।

तालिका एक से स्पष्ट होता है कि भारत में किशोर न्याय अधिनियम 2000 सफल रहा है। दस सालों में बाल अपराध में मामूली बढ़ोतरी हुई है। अमेरिका में 10 से 17 वर्ष के अपराधियों की संख्या 2010 में एक लाख व्यक्ति पर 225 थी, जबकि अगर उसी साल की हम भारत में बाल अपराधियों की संख्या देखें तो एक लाख आबादी पर मात्र दो का है। बाल अपराध में भी ज्यादातर घटनाएं चोरी और दंगे की है, जबकि बलात्कार और हत्या की संख्या कम रही है। हम जानते हैं कि दंगे समाज के किस वर्ग के द्वारा और किसलिए कराया जाता है। चोरी की घटनाएं भी ज्यादातर पेट की भूख मिटाने के लिए ही होती हैं। भारत की जेलों में क्षमता से अधिक कैदियों को रखा जाता है। ऐसे में अगर इन किशोरों को जेल भेजा जाएगा तो जेलों में कैदियों की संख्या और बढ़ेगी। किशोर जब अपनी सजा पूरी करके निकलेंगे तो अपराधों की संख्या भी बढ़ेगी। मोदी सरकार किशोर न्याय अधिनियम 2000 में बदलाव करके किशोरों की उम्र 18 से 16 क्यों करना चाहती है? क्या इससे अपराध की संख्या में कमी जाएगी ?

इस कानून को बदलने के लिए जिस दिल्ली गैंग रेप के नाबालिग सजायता का उदाहरण दिया जा रहा है वह कितना सही है? जब नाबालिग की मां से मिलने के लिए बीबीसी संवाददाता कई तो बिना लाग लपेट के उसने कहा "। हमारे घर में भी दो बेटियां हैं, अगर मेरे बेटे ने किसी लड़की के साथ ऐसा किया है तो उसे कड़ी सजा होनी चाहिए पता नहीं मैं उसे माफ कर सकती हूं या नहीं, लेकिन उसकी वह से हमारी बहुत बदनामी हुई है। मुझे अब यह चिंता खाए जा रही है कि मेरी बेटियों से विवाह कौन करेगा? "

जब उन्हें बताया गया कि वह नाबालिग है और सजा काट कर जल्द ही वापस गांव आ जाएगा तो गुस्से में उन्होंने कहा "इतनी बदनामी के बाद गांव वाले उसे यहां कदम भी नहीं रखने देंगे" ऐसे तबके में समाज में भी दंड देने का प्रावधान है, जिसने अपराधी, अपराध करने से डरता है। इस तबके के पास इतना पैसा भी नहीं होता कि वो पैरवी करें या दूर कहीं मिलने के लिए जाएं। अपने बच्चों की पैरवी करने, जेल या हवाताल में सुविधा या राहत दिलाने का काम एक वर्ग विशेष की कर पाता है। समाज का एक तबका उसको निर्दोष और भोला कहता है, जिसका लाभ उसको केस में भी मिलता है।

समाज की भूमिका

दिल्ली गैंग रेप का नाबालिग दोषी उत्तर प्रदेश के बंदायू जिले का रहने वाला है। वह 11 साल की उम्र में अपने परिवार का पेट भरने के लिए दिल्ली कमाने के लिए आ गया था। मां बताती है कि "वह संवेदनशील बच्चा था और गांव में सभी से डरता था, मुझे लगता है कि वह दिल्ली जाकर

नोट : शेष खबर पेज 8 पर देंखे..

तालिका 1

वर्ष	कुल अपराध	किशोर द्वारा अपराध	किश्रो का अपराध प्रतिशत में
2003	1716120	17819	1 प्रतिशत
2004	1832015	19229	1 प्रतिशत
2005	1822602	18939	1 प्रतिशत
2006	1878293	21088	1.1 प्रतिशत
2007	1989673	22865	1.1 प्रतिशत
2008	2093379	24535	1.2 प्रतिशत
2009	2121345	23926	1.1 प्रतिशत
2010	2224831	22740	1 प्रतिशत
2011	2325575	25125	1.1 प्रतिशत
2012	2387188	27936	1.2 प्रतिशत
2013	2647722	31725	1.2 प्रतिशत

स्रोत : द रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया

तालिका 2

वर्ष	किशोर द्वारा कुल अपराध	बलात्कार	हत्या	चोरी	दंगा
2003	17819	466	465	3680	1030
2004	19229	568	472	4554	982
2005	18939	586	522	4846	934
2006	21088	656	605	5316	988
2007	22865	746	672	5606	1440
2008	24535	776	743	5615	1574
2009	23926	798	844	5253	1422
2010	22740	858	679	4930	1081
2011	25125	1149	888	5320	1347

स्रोत : मिनिस्ट्र ऑफ स्टेटिस्टकस एंड प्रोग्राम इम्पलीमेंटेशन

शेष खबरें ...

बाल अपराध की जड़ सामाजिक विसंगतियां ...

बुरी संगत में पड़ गया, जिसकी वजह से उसने यह घिनौना अपराध किया" वह बताती है कि "बेटे से अंतिम मुलाकात छह–सात साल पहले दिल्ली जाने के समय हुई थी। दिल्ली जाने से पहले आखिरी बार उसने हमसे कहा कि मैं अपना ख्याल रखूं और फिर वो बस पकड़ कर शहर के लिए रवाना हो गया वहां जाने के बाद दो तीन साल तक उसने अपनी कमाई का पैसा भेजा, लेकिन उसकेबाद उसका कोई पता नहीं चला, मुझे लगता था कि वह अब जिंदा नहीं होगा"। सवाल यह है कि जो बच्चा 11 साल की उम्र में घर से बाहर आता है, वह हर अच्छे बच्चे की तरह संवेदनशील, दूसरों की इज्जत करने वाला और परिवार की जिम्मेदारी उठाने वाला होता है। वह जब अपने परिवार से दूर शहर में रोजी–रोटी की तलाश में आता है तो वह इतना क्रूर और हिंसक हो जाता है कि वह किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हो जाता है। इसके लिए जिम्मेदार कौन है? वह परिवार या हमारा समाज और हम?

दूसरी घटना दिल्ली की मदनग. ीर इलाके की है। 15–17 साल की उम्र के बच्चे दिन दहाड़े बाजार में एक सचिन (उम्र 20 साल) नामक व्यक्ति को चाकू से गोदकर मार डालते हैं। यह घटना बाजार में लगे सीसीटीवी में आ जाती है सिजकी निशानदेही पर पुलिस इन अभियुक्तों को गिरफतार कर लेती है। ये अभियुक्त पुलिस से पूछताछ में बताते हैं कि उनको इस हत्या कोई अफसोस नहीं है, उन्होंने जो किया वह अच्छा किया है। सचिन गली का बदमाश था व मौजमस्ती करने के लिए कम उम्र के बच्चों से चोरी, छिनौती करवाता था। इन अभियुक्तों में से एक की गली में राषन की दुकान थी और सचिन इस पर दबाव डालकर नमकीन के चार–पांच पैकेट मंगवाया करता था। दूसरे अभियुक्त के पिता बिल्डर के पास लेबर का काम किया करते थे। उस पर सचिन पैसे चुराने का दबाव डालता था। यह सिलसिला करीब एक साल से चल रहा था और सचिन के शिकार ये सभी अभियुक्त परेशान हो चुके थे। उन्होंने रोज–रोज के झंझट से तंग आकर सचिन को ठिकाने लगाने का मन बना लिया। आखिर इस तरह के अपराध के लिए कौन जिम्मेदार है? क्या हमारा शसन–प्रशासन सही काम करता तो इन अभियुक्तों द्वारा हत्या करने की नौबत आती? सचिन जिसकी उम्र 20 साल थी, इस तरह की मौज–मस्ती करने का तरीका कहां से सीखा? इसके लिए कौन दोषी है? क्या हम ऐसे अभियुक्तों को जेल भेजकर सुधार पाएंगे या अपराध की दुनिया में ढकेलेंगे? अगर हम सचमुच बाल अपराधों की संख्या कम करना चाहते हैं तो पहले बालश्रम को सख्ती से रोकना होगा और गरीब शोषित– पीड़ित तबकों के लिए बुनियादी सुविधाएं उचित शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। सर्वोपरी शोषण–दमन एवं अन्याय पर आधारित आर्थिक– सामाजिक व्यवस्था को बदलना होगा।

अच्छे काम की सराहना भी होनी चाहिए ...

क्या केदारधाम में कार सेवा नहीं हो सकती थी। क्या सनातन धर्म एक दिन भी केदार धाम की सफाई के लिए नहीं दे सकता था। क्या गुजरात से सिर्फ जहाज ही फंसे लोगों को लेने आ सकते थे, उसके बाद नरेंद्र मोदी जी केदारनाथ में अपने भागवा साथियों को नहीं भेज सकते थे। अमित शाह यूपी में खूब दौड़े, त्रासदी के कभी केदारघाटी के भ्रमण की हिम्मत क्यों नहीं दिखाई। सालों साल से बद्री–केदार धाम के नाम की रोटियां सेखने–आश्रमों के नाम पर बड़ी–बड़ी इमारतें खड़ी कर इन्हें लूट का जरिया बनाने वाले–ईश्वर के नाम राजनीति करने और ढौंग–पाखंड की नई–नई कहानियां गढ़ने वाले भगवा पंडे–पुजारी आखिर कहां विलुप्त हो गए। भीषण तबाही के दौरान पीड़ितों की चीख–पुकार के बीच नोटों से भरे बैग लेकर बेदर्दी से भागते हुए ही टीवी पर देखा था उन्हें, उसके बाद कहीं इस घाटी में धुंआ उड़ाती टोलियां नजर नहीं आयीं। हिंदू धर्म के ठेकेदार और झंडाबरदार भी कहीं नजर नहीं आ रहे। हां, दिल्ली के एक अलीशान होटल में केदार धाम का एक पुजारी के महिला के साथ बदसलूकी करते पुलिस ने कड़ा, यह खबर जरूर मिली थी। देश में भगवाधारियों की सरकार है, मगर वो तो दंगे–फसाद में फंसी है। उनके आका–गुरू धर्म संसद के नाम पर अर्धम करने से नहीं चूक रहे हैं।

पंचेश्वर बांध परियोजना : हिमालय में नए खतरे की शुरूआत

विमल भाई

नेपाल ने 15.95 करोड़ रूपये की पंचेश्वर बांध परियोजना की शुरूआती व्यवस्था के लिए दिए हैं। अगले एक साल में इस बांध की सारी बाधाएं दूर करके शुरूआत कर दी जाएगी। ऐसा नेपाल सरकार का कहना है। नेपाल स्थित कंचनपुर के पहले कार्यालय में 6 भारतीय और 6 नेपानी अधिकारी होंगे। क्षतिग्रस्त और नाजुक परिस्थिति वाले हिमालय में यह एक नए खतरे की षुरूआत है।

नेपाल ने यह हिम्मत जुई है प्रधानमंत्री जी कि पहली नेपाल यात्रा के बाद। अपनी पहली नेपाल यात्रा में प्रधानमंत्री जी ने पंचेश्वर बांध परियोजना की शुरूआत का तोहफा नेपाल को दिया है। याद रखना चाहिए कि माओवादी सरकार बनने के बाद जब नेपाल के तात्कालिक प्रधानमंत्री प्रचंड दहल भारत आए थे तो टिहरी बांध देखकर बहुत खुश हुए थे और नेपाल में बड़े बांध की हिमायत कर बैठे थे। उन्होंने सिर्फ टिहरी बांध देखा था वे उसमें डूबे शहर और गांवों के लोगों से ना तो मिले ना ही उनकी समस्याओं से परिचित हुए थे। इस बार हिमालय के सुंदर देश नेपाल में जब हमारे नए चुने गए प्रधानमंत्री गए तो उन्हें बड़े बांध बनाकर बिजली बेचने की सलाह के साथ पंचेश्वर बांध परियोजना की शुरूआत की घोषणा भी कर आए हैं।

किसी छोटे देश में बड़े देश के राष्ट्राध्यक्ष का जाना कोई बड़ी परियोजना की सौगात देना जरूरी जैसा माना जाता है। 1986 में जब रूस के राष्टाध्यक्ष गोर्बाचोव जब भारत आए थे तो टिहरी बांध में उनके देश द्वारा तकनीकी और आर्थिकीय दोनों सहयोग की बात की गई थी। उत्तराखंड के निवासी, विस्थापितों का पुनवार्स संभव नहीं हो पाया है। पर्यावरण की अपूर्णीय क्षति हाल में 2013 की आपदा में हम देख की चुके हैं। टिहरी बांध परियोजना के संदर्भों में ही इस परियोजना को अगर समझे तो 280 मीटर उंची यह बांध परियोजना मध्य हिमालय का बड़ा हिस्सा डुबाएगी। यहां कुछ प्रष्न विचारणीय है। टिहरी बांध जैसी विस्थापन की अनुत्तरित समस्याएं और पर्यावरण का कभी सही नहीं होने वाला विनाष जिसमें हजारों लाखों पेड़ कटेंगे और डूबेंगे यहां भी होगा। इसके बारे में प्रकृति को समझने वाले वैज्ञानिक और पर्यावरणविद्व सहित लोग

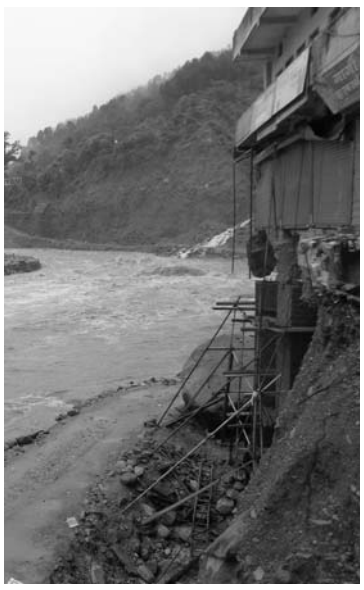

आंदोलन भी करते रहे हैं।

यहां विस्थापन और पर्यावरण की उपजने वाली समस्याओं की लंबी सूची दोहराने की कोई जरूरत नहीं लगती है न जाने कितने टन विस्फोटकों का उपयोग होगा जिससे हिमालय का यह हिस्सा और कमजोर होने वाला है। हमारी समझ यह क्यों नहीं समेट पाती कि एक वर्ष पहले उत्तराखंड में जो त्रासदी हुई उसमें बांधों का बड़ा योगदान रहा है। जहां आज भी अलकनंदा पर बने विष्णुप्रयाग बांध की सुरक्षा दीवारें बहती जा रही है। जिससे गुणवत्ता का प्रश्न तो है ही किंतु किसी न किसी तरह बांध को पूरा करना और उससे बिजली उत्पादन की जिद्द भी है। हम सब जानते हैं कि हिमालय नया पर्वत है इसके पहाड़–पहाड़ियां कच्चे हैं। पंचेष्वर बांध परियोजना भी भूकंपीय क्षेत्र के अंतर्गत है जो कि खतरे से भरपूर है। बड़े बांधों की पर्यावरण प्रभाव आंकलन रिपोर्ट बहुत कमजोर बनाई जाती है। नियमों कानूनां की अवहेलना कर मात्र किसी तरह बांध को आगे बढ़ाना ही उनकी प्रमुख सोच है। परियोजना वाले चाहे कोई भी कंपनी या निगम हो वो जानकारी छुपाते हैं और परियोजनाओं को विकास के लिए, नए शहरों की बिजली की जरूरत के लिए जबरन लादा जा रहा है।

पंचेश्वर बांध परियोजना जिसमें 280 मीटर उंचा बांध प्रस्तावित है क्या क्या समस्याएं पैदा करेगा, उनकी गिनती टिहरी बांध की समस्याओं का उदाहरण दकर की जा सकती है। जुलाई 2006 में टिहरी बांध का उद्घाटन हुआ किंतु सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के कारण आज भी टिहरी बांध पूरी तरह नहीं भर सका है। टिहरी बांध के जलाशय के सब ओर के गांव धसक रहे हैं। जिनका भू–गर्भीय परीक्षण कभी ईमानदारी से पूरा नहीं किया गया था। यदि पंचेश्वर बांध में ऐसा सब कुछ ईमानदारी से किया भी जाने वाला है तो यह बांध अपने में एक बहुत बड़ा अकल्पनीय समस्याओं का जनक होगा। क्यों इस तथ्य को भुला दिया जा रहा है कि पंचेश्वर बांध जिस महाकाली नदी पर प्रस्तावित है उसकी प्रमुख सहायक धौली गंगा पर पिछले वर्ष जून 2013 में एनएचपीसी का बांध बनने के बाद भी आज बर्बाद पड़ा है। साथ ही ऐला तोक जैसे ना जाने कितने रिहायशी इलाकों को भी बर्बाद कर चुका है। सरकारें या नेता बदलने के बाद बातें भी बदल जाती हैं। टिहरी बांध की समस्याओं को देखते हुए तत्कालीन सरकार ने कहा था कि अब हम टिहरी जैस बांध और नहीं बनाएंगे।

स्वामी मुद्रक और प्रकाशक कलावती द्वारा शैलवाणी प्रिंटर्स, 1/12 न्यू चुक्खूवाला, देहरादून से मुद्रित तथा लेन एडन आउट हाउस, डिक रोड, कंपनीबाग, मसूरी, जिला देहरादून, उत्तराखंड से प्रकाशित।

संपादक
जबर सिंह वर्मा
फोन. 9927145123
9411513894
Email-
jantaraibar@gmail.com
jabars9@gmail.com

(समाचार संबंधी किसी भी प्रकार के विवाद का न्याय क्षेत्र मसूरी (देहरादून) ही मान्य होगा)

संरक्षक मंडल
डा. जीजी पारिख
सुश्री मेधा पाटकर
श्री विजय प्रताप
श्रीमति मंजू मोहन
संपादक मंडल
डा. सुनीलम
प्रो. सुभाष वारे
विमल भाई
गुड्डी
सुरेश भाई
प्रेम पंचोली
राजेश कुमार, विरेंद्र लाल
विशेष सहयोग :
युसुफ मेहरअली युवा बिरादरी